गुफाएँ

धीरेंद्र अस्थाना

गुफाएँ

चीजें या तो अपना अर्थ खो बैठी थीं या अपने मूल में ही निरर्थक हो गई थीं। जीप में, ड्राइवर की बगलवाली सीट पर बैठा वह, अपने जीवन में पसर गई जड़ता की टोह लेने

https://www.hindiadda.com/guphaen/

के प्रयत्न में थका जा रहा था और ग्रहणशीलता से लगभग खाली हो चुकी उसकी आँखों के सामने से झरने, पहाड़, वादियाँ, सीढ़ियोंवाले खेत और नेपाली युवतियों के झुंड इस तरह गुजर रहे थे मानो बायस्कोप के जमाने के मुर्दा दृश्यों की ऊब थिर हो गई हो। जीप नेपाल के एक ऐसे पहाड़ी कस्बे की तरफ बढ़ रही थी, जिसके बारे में उसके दोस्त शिव ने कहा था, 'दिल्ली के जिस नरक में तुम जल रहे हो, उसमें तानसेन तुम्हारे लिए फुहार और ताजगी का काम करेगा।'

फुहारे! वह हँसा, तभी ड्राइवर ने जीप को एक झरने के पास रोक दिया, 'साहब! यहाँ का पानी बड़ा गजब हैं। फ्रेश हो लें।'

फ्रेश? वह बड़ी जोर से चौंका। यही तो कहा था उसने अपनी पत्नी से, 'बरसों-बरस एक जैसी जिंदगी जीते-जीते मेरे भीतर जीवन का सोता शायद सूख गया है। मैं अब फ्रेश होना चाहता हूँ। अगर पंद्रह-बीस रोज के लिए अकेला ही निकल जाऊँ?'

यात्रा पर अकेला वह कभी नहीं जाता था फिर भी, पत्नी ने बिना देर लगाए अनुमति दे दी थी। पिछले लंबे समय से वह खुद यह महसूस कर रही थी कि अविनाश सारे काम कुछ इस तरह कर रहा है मानो कोई प्रेत किसी तांत्रिक के इशारे पर बोल-डोल रहा हो। इस प्रेत से लड़ते-लड़ते वह खुद प्रेत हुई जा रही थी। दफ्तर से लेकर दोस्तों के बीच हुई कहासुनी तक को शब्दशः बयान कर देनेवाला अविनाश अब एक शिला में बदल गया था। उसकी खामोशी और खिंचे-खिंचे रहने के भाव के कारण जो ऊब और मनहूसियत उन दोनों के बीच पसर गई थी, उसका असर बच्चों की कोमल आत्माओं पर किसी बिजूखे की तरह उतरने लगा था - बच्चों को बाप से न सिर्फ अलगाता हुआ बल्कि उन्हें बाप की उपस्थिति से आतंकित, उदास और निर्लिप्त करता हुआ। अब अविनाश के, रात को घर लौटने के वक्त का भी इंतजार नहीं करते थे बच्चे। अविनाश भी घर लौटकर बच्चों के बारे में कुछ नहीं पूछता था। हद तो यह थी कि चिट्‌ठियों के बारे में एक पागल उत्सुकता से भरा रहने वाला अविनाश अब अपने नाम आए खतों को यूँ देखता था मानो वे खत न होकर अखबार के भीतर से निकले किसी कपड़ों, इलेक्ट्रोनिक्स या जूतों की नई दुकान के इश्तहार हों। कई बार तो वह अपने नाम आई चिट्‌ठियों को कई-कई दिन तक बंद ही पड़ा रहने देता था। वह समझ नहीं पा रही थी कि अविनाश के जीवन में कहाँ, क्या गलत हो गया है कि तभी अविनाश ने बाहर जाने का प्रस्ताव रखा।

'कहाँ जाओगे?' उसने पूछा था।

'नेपाल।' अविनाश ने उत्साहित होकर नहीं, एक टूटती हुई उदासी के बीच आँखें झपकाते हुए कहा था, 'बस्ती में शिव है। वह एक जीप और ड्राइवर का इंतजाम करवा देगा।'

शिव ने पूछा था, 'मैं भी साथ चलूँ?'

'नहीं।' उसने साफ मना कर दिया था, 'अगर मुझे ड्राइविंग आती, तो ड्राइवर को भी साथ न ले जाता।'

'क्या हो गया है तुम्हें?' शिव सशंकित हो गया था। वह अविनाश की आदतों से परिचित था। वह जानता था कि अविनाश जिस समय टूट रहा होता है, निपट अकेला होता है। बुरा वक्त गुजर जाने के बाद ही दोस्तों को पता चलता था कि अविनाश किसी हादसे की गिरफ्त से छूटकर लौटा है। अपनी यातनाओं में किसी को हिस्सेदार बनाने का अहसास तक अप्रिय था उसे।

'मेरे लिए यह जीवन बेमानी हो गया है। सुना तुमने!' अविनाश हाँफते हुए बोला था, 'जीवन रहे या न रहे, मैं दोनों अहसासों से खाली हो गया हूँ... और इतना अधिक खालीपन मुझसे झिल नहीं रहा है। मुझे अकेले ही जाने दो, सिर्फ अपने साथ। मैं देखना चाहता हूँ कि सिर्फ अपने ही साथ रहा जा सकता है या नहीं।'

'मगर वहाँ तुम अकेले होगे। उनके तौर-तरीकों से एकदम अपरिचित। अजनबियों के बीच यूँ अकेले जाना...'

इस वाक्य पर अविनाश ने यूँ देखा कि शिव को अपना आप एकदम बेगाना-सा लगने लगा! बेगाना और अर्थहीन। इसके बाद वह कुछ नहीं बोला।

एक ठंडा मगर सख्त आतंक सहसा उसके कलेजे पर पसर गया। पहले तानसेन और फिर पोखरा, और इन दोनों के बीच का सफर, जिसे फुहार बताया था शिव ने, और जिन दो कस्बों के प्राकृतिक वैभव पर अभिमान था नेपाल को - कुछ भी तो नहीं छू पाया था उसे।

जीप के भीतर घुस आए बादल, झील, शराब की बेशुमार दुकानें, यौवन से लदी-फँदी नेपाली युवतियाँ, झरने, पहाड़, पेड़, सारे संसार से आए विदेशी पर्यटक, खूबसूरत सेल्स गर्ल्स, सुहाना एकांत, अकेली पगडंडियाँ, लकदक बाजार, कोहरा, रिमझिम बरसात, उद्दाम, छलरहित और उन्मुक्त जीवन, चट्टानें, हनीमून मनाने आए जोड़ों

का उत्साह, संगीत-कितना कुछ था नेपाल की धरती पर! कितना समृद्ध, कितना अप्रतिम और कितना स्वप्निल!

लेकिन इन सबके बीच वह कहीं नहीं था। इन सबके बीच से, एक अदृश्य और अतृप्त आत्मा की तरह गुजरता हुआ वह फिर तानसेन के होटल सिद्धार्थ के उसी कमरा नंबर तेरह में था, जहाँ वह आते हुए रुका था - ठीक उसी स्थिति में - टूटा, थका, बेचैन, उदास, जड़ और प्रतिक्रियाहीन। अपने भीतर के अंधकार में, बौराये हुए आदमी की तरह, हाथ-पाँव मारता हुआ। सिरे से ही पराजित लेकिन फिर भी जीवित।

क्यों? उसने सोचा और ड्रेसिंग टेबल के सामने आ गया। उसने देखा, वह हाँफ रहा था। उसने चाहा कि हाथ में पकड़े शराब के गिलास को आइने पर फोड़ दे। 'क्यों जीवित है वह? जीवित है भी या सिर्फ जीवित होने के भ्रम को जी रहा है? अपने भीतर यह किस अँधेरी गुफा में उतर गया है वह, जहाँ कोई छाया, कोई रोशनी, कोई आहट नहीं पहुँच पा रही है? वह कौन-सा शापग्रस्त क्षण था, जब उसके बीचोंबीच धरा गया था वह?'

ऐसे ही एक जर्जर, विरक्त और बीहड़ क्षण में, जब दुनिया उसे निराश करने लगी थी, वह अपने भीतर उतर गया था, दबे पाँव। उत्सुकता में डूबा हुआ दूर तक निकल गया। लौटने लगा, तो रास्ते खो चुके थे। ठीक उसी तरह, जैसे पोखरा की महेंद्र गुफा में खो गए थे। उस ऊबड़-खाबड़, पथरीली, नुकीली चट्टानों से भरी गुफा में वह तब तक चलता रहा था, जब तक एक ठोस अंधकार ने उसका रास्ता नहीं रोक लिया। वापसी में वह भटक गया और बाहर निकलने के उस रास्ते की तरफ मुड़ गया, जिसके बारे में उसे बताया गया था कि इस रास्ते से सिर्फ दुःसाहसी लोग ही बाहर निकलते हैं - अपने साहस और सामर्थ्य की परीक्षा लेने के लिए।

लेकिन वह अपने साहस की थाह लेने उस रास्ते नहीं गया था। वह तो भटककर वहाँ पहुँचा था। ऊँची-नीची, गोल, फिसलन-भरी, सँकरी और ठोस अंधकार में डूबी कई चट्टानों पर पाँव टिकाते उन्हें छलाँगते हुए अंत में वह पायदान आता था, जिस पर खड़े होकर एक सँकरे रास्ते के जरिए, छलाँग लगाकर बाहर निकलना होता था। इस सँकरे रास्ते से तीन चट्टान पहले जो चट्टान थी, उसमें और दूसरी चट्टानों के बीच एक गहरी खाई थी - अँधेरे में जड़ तक डूबी हुई। और इसी चट्टान पर छलाँग लगानी थी और वह भी बिना किसी सहारे के। अँधेरे में उसकी हिम्मत जवाब दे गई। उसने लौटना चाहा, लेकिन यह देखकर लगभग चीख ही पड़ा कि जिस चट्टान पर वह था, उस तक आना तो सरल था लेकिन वहाँ से वापस लौटने के लिए फिर एक अँधेरी

छलाँग की जरूरत थी और गलत छलाँग का अंजाम जिस्म का खाई की अतल और नुकीली गहराई में गिर जाना था।

इतनी खामोश, अकेली और मर्मांतक मौत! वह सिहर उठा था और दोनों तरफ से कटी हुई उस चट्टान पर बैठा रह गया था - एक धूमिल-सी प्रतीक्षा में, कि शायद कोई आए।

और करीब पौने घंटे की व्याकुल और दहशत-भरी प्रतीक्षा के बाद लड़कियों का एक दल उधर आया था। उसी रास्ते - अपने साहस को तौलता हुआ। उस दल की मुखिया लड़की ने उसे सबसे पहले देखा। पहले घने अंधकार में, किसी प्रेत की तरह बैठे हुए, फिर टॉर्च की रोशनी में, उसकी बेबसी और कातरता को पढ़ते हुए।

'ऐसे आना चाहिए यहाँ!' मुखिया लड़की की आवाज अँधेरे में गूँजी। वह एकाएक ढेर-सी खुशी से भर उठा। इस हत्यारी गुफा में अकेला नहीं है वह।

वे नेपाली युवतियाँ थीं। रस्सी और रोशनी की मदद से उन्होंने उसे चट्टान से नीचे उतारा और बाहर निकलने के सीधे रास्ते तक पहुँचा आईं।

महेंद्र गुफा की हत्यारी खाइयों से मुक्त करा दिया था उसे, नेपाली युवतियों ने। लेकिन अपने भीतर की जिस हत्यारी गुफा में वह, दोनों तरफ से कटी हुई चट्टान पर बैठा है, वहाँ से कौन आकर ले जाएगा उसे! मुखिया लड़की का वाक्य फिर उसी चेतना में कौंध उठा - 'ऐसे आना चाहिए यहाँ!'

महेंद्र गुफा में पैंतालीस मिनट प्रतीक्षा करनी पड़ी थी उसे, लेकिन अपनी भीतर की गुफा में कैद हुए तो जमाना गुजर गया है। बाहर, कैसा होगा जीवन, उसने सोचा और रुआँसा हो आया।

शराब चढ़ ही नहीं रही थी। तीन लार्ज पैग पी लेने के बाद भी लग रहा था, मानो बीयर का पहला घूँट भरा हो।

'हे ईश्वर! मुक्ति दो मुझे।' वह बुदबुदाया। अचानक ही वह बहुत दयनीय हो उठा था। अपनी इस दयनीयता को देख उसे सहसा वे क्षण याद हो आए, जब इस धरती पर अपनी उपस्थिति को वह एक गहरी मोहासक्ति के भाव से महसूस किया करता था। दूसरों को आपस में नफरत करते और एक क्रूर प्रतिहिंसा में डूबते-उतराते देख, अपने एकांत में वह उनके ओछेपन पर खुलकर और खिलकर, एक संत की तरह, उपेक्षा भाव से मुस्कराता था। अपने होने को एक दुर्लभ अहसास की तरह सँवारा था उसने। उसे

मालूम था कि दूसरे ही नहीं, स्वयं उसकी बीवी भी कई दफा उससे कहती थी, 'इतना दंभ अच्छा नहीं है अविनाश, दूसरों का इतना ठंडा तिरस्कार एक दिन तुम्हें बहुत अकेला कर देगा।'

वह सिर्फ हँसता था और लापरवाही से कहता था, 'मैं दंभी नहीं हूँ। लेकिन मुझसे जुड़ने के लिए लोगों को मेरे स्तर तक उठकर सोचना और महसूस करना होगा। अगर लोग मेरी तरह सहनशील और कल्पनाशील नहीं हो सकते, तो मुझे मेरे साथ तो रहने दे सकते हैं कि नहीं। या कि मैं भी नीचे गिरे जाऊँ।'

तब वह नहीं जानता था कि बाह्य जगत के शोर, हलचल, घटनाओं और लोगों से दूर रहकर वह जो यात्रा अपने साथ कर रहा है, वह उसे एक ऐसी चट्टान पर ले जाकर खड़ा कर देगी जिस पर सिर्फ वहीं होगा, लोगों की चिंताओं, सरोकारों और दिलचस्पी से कतई खारिज। वह नहीं जानता था कि एक दिन अकेली चट्टान पर बैठे-बैठे, चुपचाप मर जाने की पीड़ा उसके अस्तित्व को नोचने-खसोटने और चींथने लगेगी, कि चट्टान पर बैठे-बैठे ही मरना होगा उसे।

यही सही। उसने सोचा और एक पैग शराब और पीकर कुर्सी पर पसर गया। तभी उसकी नजर घड़ी पर गई। अभी सिर्फ शाम के छः बजे थे। कल उसे चले जाना था। वह पंद्रह दिन का कार्यक्रम बनाकर आया था और छः दिन के भीतर ही भाग रहा था। यादगार के लिए कुछ खरीदारी कल ली जाए, उसने सोचा और कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। मुँह-हाथ धोकर और बाल सँवारकर वह कमरे से बाहर आया और होटल की सीढ़ियाँ उतरने लगा। होटल के ठीक सामने पार्किंग स्थल पर, उसकी जीप खड़ी थी। लेकिन ड्राइवर का कहीं पता नहीं था।

पी रहा होगा वह भी। उसने सोचा और बाजार की चढ़ाई चढ़ने लगा। बाजार की सीमा पर स्थित मोतियों की मालाओं और कंगनों की एक छोटी-सी दुकान पर वह ठिठक गया।

वह एक खाली दुकान थी। यानी ग्राहकों से खाली। चेहरे-मोहरे से नेपाली लगते हुए भी, जो लड़की सामान बेच रही थी, उसे लगा, वह नेपाली नहीं है। यानी एक हिंदुस्तानी की दुकान। वह दुकान की करीब आया।

आहट पाकर, जरा भी उत्साहित हुए बिना, लड़की ने उसकी तरफ देखा।

हे भगवान! लड़की की आँखें देखकर वह सिहर उठा। क्या यह भी दोनों तरफ से कटी हुई किसी चट्टान पर बैठी है - एक अनजाने अभिशाप को जीती हुई, किसी बद्दुआ की मुसलसल यातना में जलती हुई!

लड़की अजीब तरीके से सुंदर थी। उसकी आँखें बहुत गहरी थीं लेकिन आँखों से भी अधिक गहरी थी वह उदासीनता, जो उनमें दूर तक पसरी हुई थी। एक नजर में यूँ लगता था जैसे आँखों को जीवन से निर्वासित हो जाने का दंड मिला हो। उसके होठों में रस था लेकिन यौवन की जीवंतता नहीं थी। उसके गाल रक्तिम थे लेकिन कुछ-कुछ निस्तेज भी थे। उसके बाल, उसकी गर्दन, उसकी उँगलियाँ, उसका ललाट... जैसे किसी स्वप्न का शापग्रस्त टुकड़ा थी वह।

'क्या चाहिए?' लड़की ने कहा।

वह चौंक गया। उसकी आवाज में उत्सुकता नहीं, भय था। मानो वह कुछ खरीदने नहीं, लड़की के एकांत को तहस-नहस करने आया हो।

उसने जवाब नहीं दिया और लड़की को देखता रहा। लड़की कुछ इस तरह खुद को सहेजने-समेटने लगी कि अपना देखना उसे खुद ही नागवार लगने लगा।

'कुछ लेंगे?' लड़की ने फिर पूछा।

'क्या?'

'कुछ भी।' लड़की थोड़ा असहज हो गई, 'कंगन, माला... मेरे पास बहुत सुंदर-सुंदर हैं।'

'जो चाहे दे दो।' वह मंत्रमुग्ध था जैसे।

'जो चाहूँ...!' लड़की बुदबुदाई और दुकान में इधर-उधर देखने लगी। वह कुछ परेशान-सी हो गई थी, मानो तय न कर पा रही हो कि क्या दे। आखिर उसने सफेद मोतियों की एक सुंदर-सी माला निकाली, 'यह देखिए... सिर्फ पैंतालिस रुपए।'

'नेपाली या इंडियन?' वह बाकायदा ग्राहक बन गया।

'इंडियन। पैक कर दूँ?' लड़की थोड़ा-थोड़ा दुकानदार की मुद्रा में आ रही थी।

'तुम्हें पसंद है?' उसने अचानक ही पूछा।

'क्या?' लड़की जैसे समझी नहीं।

'हार।'

'मुझे!' लड़की चौंक गई, फिर मुस्कराकर बोली, 'मेरी पसंद से उनके लिए हार लेंगे।'

'कौन उनके?' उसने सहजता से पूछा। दरअसल वह बातचीत को देर तक चलने देना चाहता था। और देर तक ही इस दुकान पर बने भी रहना चाहता था।

'अपनी पत्नी के लिए।' लड़की भी सहज थी।

'मैंने अभी विवाह नहीं किया।'

'तो फिर होनेवाली के लिए ले रहे होंगे।'

'होनेवाली भी कोई नहीं।' वह पूर्ववत सहज था।

'तो फिर इस दुकान पर क्यों आए हैं?' लड़की को असमंजस ने घेर लिया था।

'तुमसे बात करने के लिए।' उसने निस्संकाच कहा।

'यानी आप यह हार नहीं ले रहे हैं?' लड़की कुछ-कुछ दुखी होने लगी थी।

'ले रहा हूँ, अगर यह तुम्हें पसंद है।'

'मेरी पसंद का हार यह है।' लड़की ने एक-दूसरा हार दिखाते हुए कहा, 'इसकी' चमक कभी फीकी नहीं पड़ती। पर यह एक सौ पचास रुपए का है।'

उसने चुपचाप एक सौ पचास रुपए लड़की को पकड़ा दिए। लड़की के होंठों पर मुस्कराहट खेलने लगी। वह हार की बिक्री पर कम, अपनी पसंद की स्वीकार पर ज्यादा प्रसन्न थी। उसकी प्रसन्नता उसके पोर-पोर से छलकने लगी थी।

लड़की को प्रसन्न देख उसे बहुत अच्छा लगा। शब्दों में भरपूर आत्मीयता उँड़ेलते हुए उसने पूछा, 'तुम नेपाली नहीं लगती!'

https://www.hindiadda.com/guphaen/